बी० ए० द्वितीय वर्ष

(द्वितीय प्रश्न पत्र)

महाकवि भारवि कृत किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग)

भारवि : किरातार्जुनीयम्

'किरातार्जुनीयम्' महाकवि भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। इनका समय 550 ई० से 620 ई० के बीच माना जाता है। ये धारानगरी के रहने वाले थे तथा राजा भोज के समकालीन थे। भारवि का मूल नाम दामोदर था। इनके पिता जी का नाम नारायण स्वामी था। भारवि दण्डी के प्रपितामह थे। भारवि चालुक्य वंश के राजा विष्णुवर्धन के सभापण्डित थे।

महाकवि भारवि निःसन्देह एक उच्चकोटि के कवि हैं। महाकवि भारवि ने संस्कृत महाकाव्य के क्षेत्र में अपनी एक विशिष्ट शैली और पहचान बनायी, पर कालिदास का गहरा प्रभाव उनकी कविता पर है। दूसरी ओर माघ ने उनके किरातार्जुनीयम् का अनुकरण करते हुए महाकाव्य के क्षेत्र में उन्हें पीछे छोड़ने का प्रयास किया। इसप्रकार भारवि कालक्रम में कालिदास और माघ के बीच में हुए।

किरातार्जुनीयम् में महाभारत के वनपर्व के एक प्रसंग को अठारह सर्गों में महाकाव्योचित विस्तार दिया गया है। किरात वेष धारी शिव से अर्जुन के संग्राम की घटना इसकी कथा में केन्द्रीय महत्व रखती है, इस युद्ध के द्वारा ही नायक अर्जुन को फलप्राप्ति होती है। अतः इस महाकाव्य का किरातार्जुनीयम् यह नाम सार्थक है।

इसकी कथावस्तु का आधार महाभारत का वनपर्व है। किरातार्जुनीयम् का अंगीरस वीर है। शृंगार, रौद्र, भयानक तथा शांत रसों का भी इसमें समावेश अंग के रूप में हुआ है। भारवि की भाषा-शैली की सबसे बड़ी विशेषता अर्थगौरव

मानी जाती है। कहा गया है – 'भारवेरर्थगौरवम्'। अर्थगौरव से आशय है कि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक आशय व्यक्त कर देना। भारवि स्वयं अर्थगौरव को मनुष्य की प्रत्येक वाचिक अभिव्यक्ति का मानदण्ड मानते हैं। भारवि की सूक्तियों में उनकी भाषा-शैली और अभिव्यक्ति की विशेषता तथा अर्थगौरव का प्रभावपूर्ण निदर्शन होता है। चिन्तन की गम्भीरता इन सूक्तियों को स्मरणीय बनाती हैं।

उदाहरणार्थ –

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः। (1/4)

ऐसा वचन दुर्लभ है, जो हितकर भी हो और मनोहर भी हो।

वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः। (1/8)

नीच व्यक्ति से मित्रता के स्थान पर महापुरुष से विरोध होना भी अधिक अच्छा है।

किरातार्जुनीयम् की सर्वप्रसिद्ध टीका मल्लिनाथ की है, जिसका नाम घण्टापथ है। संस्कृत के तीन महाकाव्यों भारवि प्रणीत किरातार्जुनीयम् माघ प्रणीत शिशुपालवधम् तथा श्री हर्ष प्रणीत नैषधीयचरितम् के समूह को बृहत्त्रयी नाम से उल्लिखित किया जाता है। इनमें भारवि प्रणीत किरातार्जुनीयम् अन्यतम है।

प्रथम सर्ग का वर्ण्य विषय

प्रथम सर्ग में कुल 46 श्लोक हैं। 44 श्लोक वंशस्थ छन्द में हैं तथा 45 वां पुष्पिताग्रा छन्द में तथा 46 वाँ श्लोक मालिनी छन्द में है।

प्रथम सर्ग का प्रारम्भ दुर्योधन के राज्य वृत्तान्त एवं प्रजा विषयक व्यवहार को जानने के लिए युधिष्ठिर के द्वारा भेजे गये वनेचर के लौटने से होता है। ब्रह्मचारी वेशधारी वनेचर महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया और एकान्त में उनका आदेश पाकर शब्दसौष्ठव और अर्थगाम्भीर्य से युक्त वचन

कहने लगा – हे महाराज, कार्य में लगाये गये सेवकों का यह कर्तव्य है कि वे स्वामियों को धोखा न दें, क्योंकि स्वामी लोग सेवकों के माध्यम से ही सभी कुछ जानते हैं, अतः मेरे कथन में यदि कुछ अप्रिय बात हो तो उसे क्षमा करेंगे, क्योंकि हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ होते हैं। जो मन्त्री राजा को उचित उपदेश नहीं देता, वह कुत्सित होता है और जो राजा हित चाहने वाले मन्त्री की सलाह नहीं मानता, वह योग्य राजा नहीं होता मन्त्रियों और राजाओं में परस्पर अनुकूलता होने पर ही राज्य की समृद्धि होती है। राजाओं का चरित्र दुर्बोध होता है, मेरे जैसा मन्दबुद्धि व्यक्ति उसे भला कैसे जान सकता है? फिर भी शत्रुओं के गुप्त रहस्यों का जो कुछ भेद मैं जान सका, वह आपका ही प्रभाव है। सिंहासन पर आसीन होकर भी दुर्योधन आपसे भयभीत है और पराजय की आशंका करता है, अतः कपट से जीते गए राज्य को उत्तम नीति का आचरण कर अपने वश में करने के लिए प्रयत्नशील है। कुटिल होते हुए भी वह गुणों का अर्जन करके अपनी कीर्ति का विस्तार कर रहा है। काम-क्रोधादि मानसिक विकारों को जीतकर वह मनु द्वारा प्रतिपादित राजधर्म के मार्ग पर चलने का प्रयत्न कर रहा है। धर्म, अर्थ और काम का समान रूप से सेवन करता है और ये सभी दिन-दूने रात-चौगुने बढ़ रहे हैं। साम, दान, दण्ड, भेद आदि उपायों का भी दुर्योधन बड़ी दक्षता से प्रयोग करता है। स्वामिभक्त दूतों के द्वारा वह अपने अधीन राजाओं की सभी बातों को जान लेता है। अपने अनुज दुःशासन को युवराज बनाकर पुरोहित के आदेश से यज्ञ भी कर रहा है, किन्तु इन सबके बावजूद निष्कण्टक पृथ्वी का शासक होकर भी आपसे पराजय की आशंका करके वह भयभीत है। वह आपके साथ कुटिलता करने में तत्पर है, अतः आप उसका प्रतीकार कीजिए।

इसप्रकार कहकर और युधिष्ठिर से पुरस्कार आदि के रूप में सत्कार प्राप्त कर वनेचर चला गया। युधिष्ठिर ने महल में प्रवेश करके द्रौपदी एवं भाइयों के सामने वनेचर द्वारा बताया गया सारा वृत्तान्त सुनाया। शत्रुओं की समृद्धि का समाचार सुनकर द्रौपदी अपने मनोवेग को रोक न सकी और युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त कर शत्रु से बदला लेने के लिए प्रेरित करती है। वह कहती है - राजन्! अब शान्ति छोड़िए। क्षत्रियों के तेज को धारण कीजिए। शान्ति का अवलम्बन करके निष्काम मुनि लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा लोग नहीं। आप जैसे तेजस्वियों में अग्रणी व्यक्ति यदि इसप्रकार का अपमान सहकर संतोष करके बैठ जायें, तो इस संसार से मनस्विता समाप्त हो जाएगी। यदि क्षमा और शान्ति को ही हमेशा के लिए सुख का साधन मानते हो, तो धनुष फेंककर जटाएँ धारण कर लिजीए और यहाँ वन में बैठकर अग्नि में आहुति कीजिए। शत्रु अपकार करने में लगा है, इसलिए तुम्हें अत्यन्त तेजस्वी होते हुए, समय की प्रतीक्षा करने और शर्त का पालन करने की आवश्यकता नहीं। विजय चाहने वाले राजा किसी बहाने सन्धि को तोड़कर शत्रु से बदला लेते हैं। अन्त में द्रौपदी शुभकामना व्यक्त करते हुए कहती है कि आपको राजलक्ष्मी उसीप्रकार प्राप्त होवे, जैसे रात्रि के अन्धकार से निकलते हुए सूर्य से प्रकाश मिलता है।